सर्वज्ञवाद

लोक और शास्त्रमें सर्वज्ञ शब्दका उपयोग, योगसिद्ध विशिष्ट अतीन्द्रिय ज्ञानके सम्भवमें विद्वानों और साधारण लोगोंकी श्रद्धा, जुदे-जुदे दार्शनिकोंके द्वारा अपने-अपने मन्तव्यानुसार भिन्न-भिन्न प्रकारके विशिष्ट ज्ञानरूप अर्थमें सर्वज्ञ जैसे पदोंको लागू करनेका प्रयत्न और सर्वज्ञरूपसे माने जानेवाले किसी व्यक्तिके द्वारा ही मुख्यतया उपदेश किये गए धर्म या सिद्धान्तकी अनुगामियोंमें वास्तविक प्रतिष्ठा—इतनी बातें भगवान महावीर और बुद्धके पहिले भी थीं—इसके प्रमाण मौजूद हैं। भगवान् महावीर और बुद्धके समयसे लेकर आजतकके करीब ढाई हजार वर्षके भारतीय साहित्यमें तो सर्वज्ञत्वके अस्ति-नास्तिपक्षोंकी, उसके विविध स्वरूप तथा समर्थक और विरोधी युक्तिवादोंकी, क्रमशः विकसित सूक्ष्म और सूक्ष्मतर स्पष्ट एवं मनोरंजक चर्चाएँ पाई जाती हैं।

सर्वज्ञत्वके नास्तिपक्षकार मुख्यतया तीन हैं—चार्वाक, अज्ञानवादी और पूर्वमीमांसक। उसके अस्तिपक्षकार तो अनेक दर्शन हैं, जिनमें न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन दर्शन मुख्य हैं।

चार्वाक इन्द्रियगम्य भौतिक लोकमात्र को मानता है इसलिये उसके मतमें अतीन्द्रिय आत्मा तथा उसकी शक्तिरूप सर्वज्ञत्व आदिके लिये कोई स्थान ही नहीं है। अज्ञानवादीका अभिप्राय आधुनिक वैज्ञानिकोंकी तरह ऐसा जान पड़ता है कि ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञानकी भी एक अन्तिम सीमा होती है। ज्ञान कितना ही उच्च कक्षाका क्यों न हो पर वह त्रैकालिक सभी स्थूल-सूक्ष्म भावोंको पूर्ण रूपसे जाननेमें स्वभावसे ही असमर्थ है। अर्थात् अन्तमें कुछ न कुछ अज्ञेय रह ही जाता है। क्योंकि ज्ञानकी शक्ति ही स्वभावसे परिमित है। वेदवादी पूर्वमीमांसक आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक आदि अतीन्द्रिय पदार्थ मानता है। किसी प्रकारका अतीन्द्रिय ज्ञान होनेमें भी उसे कोई आपत्ति नहीं फिर भी वह अपौरुषेयवेदवादी होनेके कारण वेदके अपौरुषेयत्वमें बाधक ऐसे किसी भी प्रकारके अतीन्द्रिय ज्ञानको मान नहीं सकता। इसी एकमात्र अभिप्रायसे उसने[1]

---

१. 'चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थं शक्नोत्यवगमयितुम्, नान्यत् किञ्चनेन्द्रियम्' —शाबरभा० १. १. २। 'नानेन वचनेनेह सर्वज्ञत्वनिराक्रिया। वचनादृत इत्येवमपवादो हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेद-निरपेक्ष साक्षात् धर्मज्ञ या सर्वज्ञके अस्तित्वका विरोध किया है। वेद द्वारा धर्माधर्म या सर्व पदार्थ जाननेवालेका निषेध नहीं किया।

बौद्ध और जैन दर्शनसम्मत साक्षात् धर्मज्ञवाद या साक्षात् सर्वज्ञवादसे वेदके अपौरुषेयत्वका केवल निरास ही अभिप्रेत नहीं है बल्कि उसके द्वारा वेदोंमें अप्रामाण्य बतलाकर वेदभिन्न आगमोंका प्रामाण्य स्थापित करना भी अभिप्रेत है। इसके विरुद्ध जो न्याय-वैशेषिक आदि वैदिक दर्शन सर्वज्ञवादी हैं उनका तात्पर्य सर्वज्ञवादके द्वारा वेदके अपौरुषेयत्ववादका निरास करना अवश्य है, पर साथ ही उसी वादके द्वारा वेदका पौरुषेयत्व बतलाकर उसीका प्रामाण्यस्थापन करना भी है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन ईश्वरवादी हैं। वे ईश्वरके ज्ञानको नित्य[1]—उत्पाद-विनाशरहित और पूर्ण—त्रैकालिक सूक्ष्म-स्थूल समग्र भावोंको युगपत् जानने-वाला—मानकर तद्द्वारा उसे सर्वज्ञ मानते हैं। ईश्वरभिन्न आत्माओंमें वे सर्व-ज्ञत्व मानते हैं सही, पर सभी आत्माओंमें नहीं किन्तु योगी आत्माओंमें। योगियोंमें भी सभी योगियोंको वे सर्वज्ञ नहीं मानते किन्तु जिन्होंने योग द्वारा वैसा सामर्थ्य प्राप्त किया हो सिर्फ उन्हींको[2]। न्याय-वैशेषिक मतानुसार यह

संश्रितः॥ यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात् सर्वज्ञः केन वार्यते। एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते॥ नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन् प्रतिपद्यते।' श्लोकवा० चोद० श्लो० ११०–२। 'धर्मज्ञत्वनिषेधश्च केवलोऽत्रोपयुज्यते। सर्वमन्य-द्विजानंस्तु पुरुषः केन वार्यते॥' –तत्त्वसं० का० ३१२८। यह श्लोक तत्त्वसंग्रह में कुमारिलका कहा गया है। —पृ० ८४४

१. 'न च बुद्धीच्छाप्रयत्नानां नित्यत्वे कश्चिद्विरोधः। दृष्टा हि गुणानामा-श्रयभेदेन द्वयी गतिः नित्यता अनित्यता च तथा बुद्ध्यादीनामपि भविष्य-तीति।' —कन्दली पृ० ६०। 'एतादृशानुमितौ लाघवज्ञानसहकारेण ज्ञाने-च्छाकृतिषु नित्यत्वमेकत्वं च भासते इति नित्यैकत्वसिद्धिः।' —दिन-करी पृ० २६।

२. वै० सू० ६. १. ११–१३। 'अस्मद्विशिष्टानां तु योगिनां युक्तानां योगजधर्मानुगृहीतेन मनसा स्वात्मान्तराकाशदिक्कालपरमाणुवायुमनस्सु तत्सम-वेतगुणकर्मसामान्यविशेषेषु समवाये चावितथं स्वरूपदर्शनमुत्पद्यते। वियुक्तानां पुनश्चतुष्टयसन्निकर्षाद्योगजधर्मानुग्रहसामर्थ्यात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टेषु प्रत्यक्ष-मुत्पद्यते।' –प्रश० पृ० १८७। वै० सू० ६. १. ११–१३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियम नहीं कि सभी योगियोंको वैसा सामर्थ्य अवश्य प्राप्त हो। इस मतमें जैसे मोक्षके वास्ते सर्वज्ञत्वप्राप्ति अनिवार्य शर्त नहीं है वैसे यह भी सिद्धान्त[1] है कि मोक्षप्राप्तिके बाद सर्वज्ञ योगियोंकी आत्मामें भी पूर्ण ज्ञान शेष नहीं रहता, क्योंकि वह ज्ञान ईश्वरज्ञानकी तरह नित्य नहीं पर योगजन्य होनेसे अनित्य है।

सांख्य, योग[2] और वेदान्त दर्शनसम्मत सर्वज्ञत्वका स्वरूप वैसा ही है जैसा न्यायवैशेषिकसम्मत सर्वज्ञत्वका। यद्यपि योगदर्शन न्याय-वैशेषिककी तरह ईश्वर मानता है यथापि वह न्याय-वैशेषिककी तरह चेतन आत्मामें सर्वज्ञत्वका समर्थन न कर सकनेके कारण विशिष्ट बुद्धितत्त्व[3] में ही ईश्वरीय सर्वज्ञत्वका समर्थन कर पाता है। सांख्य, योग और वेदान्तमें बौद्धिक सर्वज्ञत्वकी प्राप्ति भी मोक्षके वास्ते अनिवार्य[4] वस्तु नहीं है, जैसा कि जैन दर्शनमें माना जाता है। किन्तु न्याय-वैशेषिक दर्शनकी तरह वह एक योगविभूति मात्र होनेसे किसी-किसी साधकको होती है।

सर्वज्ञवादसे संबन्ध रखनेवाले हजारों वर्षके भारतीय दर्शन शास्त्र देखनेपर भी यह पता स्पष्टरूपसे नहीं चलता कि अमुक दर्शन ही सर्वज्ञवादका प्रस्थापक है। यह भी निश्चयरूपसे कहना कठिन है कि सर्वज्ञत्वकी चर्चा शुद्ध तत्त्व चिन्तनमेंसे फलित हुई है, या साम्प्रदायिक भावसे धार्मिक खण्डन-मण्डनमें से फलित हुई है? यह भी सप्रमाण बतलाना सम्भव नहीं कि ईश्वर, ब्रह्मा आदि दिव्य आत्माओंमें माने जानेवाले सर्वज्ञत्वके विचारसे मानुषिक सर्वज्ञत्वका विचार प्रस्तुत हुआ, या बुद्ध-महावीरसदृश मनुष्यमें माने जानेवाले सर्वज्ञत्वके

---

१. 'तदेवं धिषणादीनां नवानामपि मूलतः। गुणानामात्मनो ध्वंसः सोऽपवर्गः प्रकीर्तितः॥' —न्यायम० पृ० ५०८।

२. 'तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्॥'
—योगसू० ३.५४।

३. 'निर्धूतरजस्तमोमलस्य बुद्धिसत्त्वस्य परे वैशारद्ये परस्यां वशीकारसंज्ञायां वर्त्तमानस्य सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्ररूपप्रतिष्ठस्य....सर्वज्ञातृत्वम्, सर्वात्मनां गुणानां शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मत्वेन व्यवस्थितानामक्रमोपारूढं विवेकजं ज्ञानमित्यर्थः।' —योगभा० ३.४९।

४. 'प्राप्तविवेकजज्ञानस्य अप्राप्तविवेकजज्ञानस्य वा सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति।' —योगसू० ३.५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार-आन्दोलनसे ईश्वर, ब्रह्मा आदिमें सर्वज्ञत्वका समर्थन किया जाने लगा, या देव-मनुष्य उभयमें सर्वज्ञत्व माने जानेका विचारप्रवाह परस्पर निरपेक्ष रूपसे प्रचलित हुआ ? यह सब कुछ होते हुए भी सामान्यरूपसे इतना कहा जा सकता है कि यह चर्चा धर्म-सम्प्रदायोंके खण्डन-मण्डनमेंसे फलित हुई है और पीछेसे उसने तत्त्वज्ञानका रूप धारण करके तात्त्विक चिन्तनमें भी स्थान पाया है। और वह तटस्थ तत्त्वचिन्तकोंका विचारणीय विषय बन गई है। क्योंकि मीमांसक जैसे पुरातन और प्रबल वैदिक दर्शनके सर्वज्ञत्व संबन्धी अस्वीकार और शेष सभी वैदिक दर्शनोंके सर्वज्ञत्व संबन्धी स्वीकारका एक मात्र मुख्य उद्देश्य यही है कि वेदका प्रामाण्य स्थापित करना जब कि जैन, बौद्ध आदि मनुष्य-सर्वज्ञत्ववादी दर्शनोंका एक यही उद्देश्य है कि परम्परासे माने जानेवाले वेदप्रामाण्यके स्थानमें इतर शास्त्रोंका प्रामाण्य स्थापित करना और वेदोंका अप्रामाण्य। जब कि वेदका प्रामाण्य-अप्रामाण्य ही असर्वज्ञवाद, देव-सर्वज्ञ-वाद और मनुष्य-सर्वज्ञवादकी चर्चा और उसकी दलीलोंका एकमात्र मुख्य विषय है तब धर्म-संप्रदायको इस तत्त्वचर्चाका उत्थानबीज माननेमें सन्देहको कम से कम अवकाश है।

मीमांसकधुरीण कुमारिलने धर्मज्ञ और सर्वज्ञ दोनों वादोंका निराकरण बड़े आवेश और युक्तिवादसे किया है (मीमांसाश्लो० सू० २. श्लो० ११० से १४३) वैसे ही बौद्धप्रवर शान्तरक्षितने उसका जवाब उक्त दोनों वादोंके समर्थनके द्वारा बड़ी गम्भीरता और स्पष्टतासे दिया है (तत्त्वसं० पृ० ८४६ से) इसलिए यहाँपर एक ऐतिहासिक प्रश्न होता है कि क्या धर्मज्ञ और सर्वज्ञ दोनों वाद अलग-अलग सम्प्रदायोंमें अपने-अपने युक्तिबलपर स्थिर होंगे, या किसी एक वादमेंसे दूसरे वादका जन्म हुआ है ? अभीतकके चिन्तनसे यह जान पड़ता है कि धर्मज्ञ और सर्वज्ञ दोनों वादोंकी परम्परा मूलमें अलग-अलग ही है। बौद्ध सम्प्रदाय धर्मज्ञवादकी परम्पराका अवलम्बी ख़ास रहा होगा क्योंकि खुद बुद्धने (मज्झिम० चूल-मालुंक्यपुत्तसुत्त २.१) अपनेको सर्वज्ञ उसी अर्थमें कहा है जिस अर्थमें धर्मज्ञ या मार्गज्ञ शब्दका प्रयोग होता है। बुद्धके वास्ते धर्मशास्ता, धर्मदेशक आदि विशेषण पिटकग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। [1]धर्मकीर्तिने बुद्धमें सर्वज्ञत्वको अनुपयोगी बताकर केवल धर्मज्ञत्व ही स्थापित किया है, जब

---

१. 'हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकः। यः प्रमाणमसाविष्टो न तु सर्वस्य वेदकः ॥ दूरं पश्यतु वा मा वा तत्त्वमिष्टं तु पश्यतु।' —प्रमाणवा० २. ३२–३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि शान्तरक्षितने प्रथम धर्मज्ञत्व सिद्धकर गौणरूपसे सर्वज्ञत्वको भी स्वीकार[1] किया है।

सर्वज्ञवादकी परम्पराका अवलम्बी मुख्यतया जैन सम्प्रदाय ही जान पड़ता है क्योंकि जैन आचार्योंने प्रथमसे ही अपने तीर्थंकरोंमें सर्वज्ञत्वको माना और स्थापित किया[2] है। ऐसा सम्भव है कि जब जैनोंके द्वारा प्रबल रूपसे सर्वज्ञत्व-की स्थापना और प्रतिष्ठा होने लगी तब बौद्धोंके वास्ते बुद्धमें सर्वज्ञत्वका समर्थन करना भी अनिवार्य और आवश्यक हो गया। यही सबब है कि बौद्ध तार्किक ग्रन्थोंमें धर्मज्ञवादसमर्थनके बाद सर्वज्ञवादका समर्थन होने पर भी उसमें वह जोर और एकतानता[3] नहीं है, जैसी कि जैन तार्किक ग्रन्थोंमें है।

मीमांसक (श्लो० सू० २. श्लो० ११०–१४३. तत्त्वसं० का० ३१२४–३२४६ पूर्वपक्ष) का मानना है कि यागादिके प्रतिपादन और उसके द्वारा धर्माधर्मादिका, किसी पुरुषविशेष की अपेक्षा रखे बिना ही, स्वतन्त्र विधान करना यही वेदका कार्य है। इसी सिद्धान्तको स्थिर रखनेके वास्ते कुमारिलने कहा है कि कोई भले ही धर्माधर्म-भिन्न अन्य

---

१. 'स्वर्गापवर्गसम्प्राप्तिहेतुज्ञोऽस्तीति गम्यते। साक्षान्न केवलं किन्तु सर्वज्ञोऽपि प्रतीयते ॥'–तत्त्वसं० का० ३३०९। 'मुख्यं हि तावत् स्वर्गमोक्षसम्प्रापकहेतुज्ञत्वसाधनं भगवतोऽस्माभिः क्रियते। यत्पुनः अशेषार्थपरिज्ञातृत्वसाधनमस्य तत् प्रासंगिकमन्यत्रापि भगवतो ज्ञानप्रवृत्तेः बाधकप्रमाणाभावात् साक्षादशेषार्थपरिज्ञानात् सर्वज्ञो भवन् न केनचिद् बाध्यते इति, अतो न प्रेक्षावतां तत्प्रतिक्षेपो युक्तः।'–तत्त्वसं० प० पृ० ८६३।

२. 'से भगवं अरहं जिणे केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स पज्जाए जाणइ, तं० आगइं गइं ठिइं चयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं च णं विहरइ।' आचा० श्रु० २. चू० ३. पृ० ४२५ A. 'तं नत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं च'—आव० नि० गा० १२७। भग० श० ६. उ० ३२। 'सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा। अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥'–आप्तमी० का० ५।

३. 'यैः स्वेच्छासर्वज्ञो वर्ण्यते तन्मतेनाप्यसौ न विरुध्यते इत्यादर्शयन्नाह यद्यदित्यादि—यद्यदिच्छति बोद्धुं वा तत्तद्वेत्ति नियोगतः। शक्तिरेवंविधा तस्य प्रहीणावरणो ह्यसौ ॥'–तत्त्वसं० का० ३६२८। मिलि० ३. ६. २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब वस्तु साक्षात् जान सके पर धर्माधर्मको वेदनिरपेक्ष होकर कोई साक्षात् नहीं जान सकता, चाहे वह जाननेवाला बुद्ध, जिन आदि जैसा मनुष्य योगी हो, चाहे वह ब्रह्मा, विष्णु आदि जैसा देव हो, चाहे वह कपिल, प्रजापति आदि जैसा ऋषि या अवतारी हो। कुमारिलका कहना है कि सर्वत्र सर्वदा धर्ममर्यादा एक सी है, जो सदा सर्वत्र एकरूप वेद द्वारा विहित माननेपर ही सङ्गत हो सकती है। बुद्ध आदि व्यक्तियोंको धर्मके साक्षात् प्रतिपादक माननेपर वैसी मर्यादा सिद्ध हो नहीं सकती क्योंकि बुद्ध आदि उपदेशक कभी निर्वाण पानेपर नहीं भी रहते। जीवितदशामें भी वे सब क्षेत्रोंमें पहुँच नहीं सकते। सब धर्मोपदेशकोंकी एकवाक्यता भी सम्भव नहीं। इस तरह कुमारिल साक्षात् धर्मज्ञत्वका निशेध[2] करके फिर सर्वज्ञत्वका भी सबमें निषेध करते हैं। वह पुराणोक्त ब्रह्मादि देवोंके सर्वज्ञत्वका अर्थ भी, जैसा उपनिषदोंमें देखा जाता है, केवल आत्मज्ञान[3] परक करते हैं। बुद्ध, महावीर आदिके बारेमें कुमारिलका यह भी कथन[4] है कि वे वेदज्ञ ब्राह्मणजातिको धर्मोपदेश न करने और वेदविहीन मूर्ख शूद्र आदिको धर्मोपदेश करनेके कारण वेदाभ्यासी एवं वेद

---

१. 'नहि अतीन्द्रियार्थे वचनमन्तरेण अवगतिः सम्भवति, तदिदमुक्तम्—अशक्यं हि तत् पुरुषेण ज्ञातुमृते वचनात्'—शाबरभा० १. १. २। श्लो० न्याय० पृ० ७६।

२. 'कुड्यादिनिःसृतत्वाच्च नाश्वासो देशनासु नः। किन्तु बुद्धप्रणीताः स्युः किमु कैश्चिद् दुरात्मभिः। अदृश्यैः विप्रलम्भार्थं पिशाचादिभिरीरिताः। एवं यैः केवलं ज्ञानमिन्द्रियाद्यनपेक्षिणः। सूक्ष्मातीतादिविषयं जीवस्य परिकल्पितम् ॥'—श्लोकवा० सू० २. श्लो० १३६–४१। 'यत्तु वेदवादिभिरेव कैश्चिदुक्तम्-नित्य एवाऽयं वेदः प्रजापतेः प्रथममार्षज्ञानेनावबुद्धो भवतीति तदपि सर्वज्ञवदेव निराकार्यमित्याह–नित्येति'—श्लो० न्याय० सू० २. १४३। "अथापि वेददेहत्वात् ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सर्वज्ञानमयाद्वेदात्सार्वज्ञ्यं मानुषस्य किम् ॥'—तत्त्वसं० का० ३२०८, ३२१३–१४।

३. 'ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति योपि दशाव्ययः। शङ्करः श्रूयते सोऽपि ज्ञानवानात्मवित्तया ॥'—तत्वसं० का० ३२०६।

४. 'शाक्यादिवचनानि तु कतिपयदमदानादिवचनवर्जं सर्वाण्येव समस्तचतुर्दशविद्यास्थानविरुद्धानि त्रयीमार्गव्युत्थितविरुद्धाचरणैश्च बुद्धादिभिः प्रणीतानि। त्रयीबाह्येभ्यश्चतुर्थवर्णनिरवसितप्रायेभ्यो व्यामूढेभ्यः समर्पितानीति न वेदमूलत्वेन संभाव्यन्ते।' तन्त्रवा० पृ० ११६। तत्त्वसं० का० ३२२६–२७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा धर्मज्ञ भी नहीं थे। बुद्ध, महावीर आदिमें सर्वज्ञत्वनिषेधकी एक प्रबल युक्ति कुमारिलने यह दी[1] है कि परस्परविरुद्धभाषी बुद्ध, महावीर, कपिल आदि मेंसे किसे सर्वज्ञ माना जाय और किसे न माना जाय ? अतएव उनमेंसे कोई सर्वज्ञ नहीं हैं। यदि वे सर्वज्ञ होते तो सभी वेदवत् अविरुद्धभाषी होते, इत्यादि।

शान्तरक्षितने कुमारिल तथा अन्य सामट, यज्ञट आदि मीमांसकोंकी दलीलोंका बड़ी सूक्ष्मतासे सविस्तर खण्डन (तत्त्वसं० का० ३२६३ से) करते हुए कहा है कि—वेद स्वयं ही भ्रान्त एवं हिंसादि दोषयुक्त होनेसे धर्मविधायक हो नहीं सकता। फिर उसका आश्रय लेकर उपदेश देनेमें क्या विशेषता है ? बुद्ध[2] ने स्वयं ही स्वानुभवसे अनुकम्पाप्रेरित होकर अभ्युदय निःश्रेयससाधक धर्म बतलाया है। मूर्ख शूद्र आदि को उपदेश देकर तो उसने अपनी करुणा-वृत्तिके द्वारा धार्मिकता ही प्रकट की है। वह मीमांसकों से[3] पूछता है कि जिन्हें तुम ब्राह्मण कहते हो उनकी ब्राह्मणताका निश्चित प्रमाण क्या है ?। अतीतकाल बड़ा लम्बा है, स्त्रियोंका मन भी चपल है, इस दशामें कौन कह सकता है कि ब्राह्मण कहलानेवाली सन्तानके माता-पिता शुद्ध ही रहे हों और कभी किसी विजातीयताका मिश्रण हुआ न हो। शान्तरक्षित[4]ने यह भी कह दिया कि सच्चे ब्राह्मण और श्रमण बुद्ध शासनके सिवाय अन्य किसी धर्ममें नहीं हैं (का० ३५८९-९२)। अन्तमें शान्तरक्षितने पहिले सामान्यरूपसे सर्वज्ञत्वका सम्भव सिद्ध किया है, फिर उसे महावीर, कपिल आदिमें असम्भव

---

१. 'सर्वज्ञेषु च भूयःसु विरुद्धार्थोपदेशिषु। तुल्यहेतुषु सर्वेषु को नामैकोऽवधार्यताम् ॥ सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलो नेति का प्रमा। अथोभावपि सर्वज्ञौ मतभेदः तयोः कथम् ॥'—तत्त्वसं० का० ३१४८–४९ ॥

२. 'करुणापरतन्त्रास्तु स्पष्टतत्त्वनिदर्शिनः। सर्वापवादनिःशङ्काश्चक्रुः सर्वत्र देशनाम् ॥ यथा यथा च मौर्ख्यादिदोषदुष्टो भवेज्जनः। तथा तथैव नाथानां दया तेषु प्रवर्तते ॥'—तत्त्वसं० का० ३५७१–२।

३. 'अतितश्च महान् कालो योषितां चातिचापलम्। तद्भवत्यपि निश्चेतुं ब्राह्मणत्वं न शक्यते ॥ अतीन्द्रियपदार्थज्ञो नहि कश्चित् समस्ति वः। तदन्वयविशुद्धिं च नित्यो वेदोपि नोक्तवान् ॥'—तत्त्वसं० का० ३५७९-८०।

४. 'ये च वाहितपापत्वाद् ब्राह्मणाः पारमार्थिकाः। अभ्यस्तामलनैरात्म्यास्ते मुनेरेव शासने ॥ इहैव श्रमणस्तेन चतुर्धा परिकीर्त्यते। शून्याः परप्रवादा हि श्रमणैर्ब्राह्मणैस्तथा ॥'—तत्त्वसं० का० ३५८९-९०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाकर केवल बुद्धमें ही सिद्ध किया है। इस विचारसरणीमें शान्तरक्षितकी मुख्य युक्ति यह[1] है कि चित्त स्वयं ही प्रभास्वर अतएव स्वभावसे प्रज्ञाशील है। क्लेशावरण, ज्ञेयावरण आदि मल आगन्तुक हैं। नैरात्म्यदर्शन जो एक मात्र सत्यज्ञान है, उसके द्वारा आवरणोंका क्षय होकर भावनाबलसे अन्तमें स्थायी सर्वज्ञताका लाभ होता है। ऐकान्तिक[2] क्षणिकत्वज्ञान, नैरात्म्यदर्शन आदिका अनेकान्तोपदेशी ऋषभ, वर्द्धमानादिमें तथा आत्मोपदेशक कपिलादिमें सम्भव नहीं अतएव उनमें आवरणक्षय द्वारा सर्वज्ञत्वका भी सम्भव नहीं। इस तरह सामान्य सर्वज्ञत्वकी सिद्धिके द्वारा अन्तमें अन्य तीर्थङ्करोंमें सर्वज्ञत्वका असम्भव बतलाकर केवल सुगतमें ही उसका अस्तित्व सिद्ध किया है और उसीके शास्त्रको ग्राह्य बतलाया है।

शान्तरक्षितकी तरह प्रत्येक सांख्य या जैन आचार्यका भी यही प्रयत्न रहा है कि सर्वज्ञत्वका सम्भव अवश्य है पर वे सभी अपने-अपने तीर्थङ्करोंमें ही सर्वज्ञत्व स्थापित करते हुए अन्य तीर्थङ्करोंमें उसका नितान्त असम्भव बतलाते हैं।

जैन आचार्योंकी भी यही दलील रही है कि अनेकान्त सिद्धान्त ही सत्य है। उसके यथावत् दर्शन और आचरणके द्वारा ही सर्वज्ञत्व लभ्य है। अनेकान्तका साक्षात्कार व उपदेश पूर्णरूपसे ऋषभ, वर्द्धमान आदिने ही किया अतएव वे ही सर्वज्ञ और उनके उपदिष्ट शास्त्र ही निर्दोष व ग्राह्य हैं। सिद्धसेन हों या समन्तभद्र, अकलङ्क हों या हेमचन्द्र सभी जैनाचार्योंने सर्वज्ञसिद्धिके प्रसङ्गमें वैसा ही युक्तिवाद अवलम्बित किया है जैसा बौद्ध सांख्यादि आचार्यों-

---

१. 'प्रत्यक्षीकृतनैरात्म्ये न दोषो लभते स्थितिम्। तद्विरुद्धतया दीप्ते प्रदीपे तिमिरं यथा ॥'—तत्त्वसं० का० ३३३८। 'एवं क्लेशावरणप्रहाणं प्रसाध्य ज्ञेयावरणप्रहाणं प्रतिपादयन्नाह—साक्षात्कृतिविशेषादिति—साक्षात्कृतिविशेषाच्च दोषो नास्ति सवासनः। सर्वज्ञत्वमतः सिद्धं सर्वावरणमुक्तितः ॥'—तत्त्वसं० का० ३३३९। 'प्रभास्वरमिदं चित्तं तत्त्वदर्शनसात्मकम्। प्रकृत्यैव स्थितं यस्मात् मलास्त्वागन्तवो मताः ।'—तत्त्वसं० का० ३४३५। प्रमाणवा० ३, २०८।

२. 'इदं च वर्द्धमानादेर्नैरात्म्यज्ञानमीदृशम्। न समस्त्यात्मदृष्टौ हि विनष्टाः सर्वतीर्थिकाः ॥ स्याद्वादाक्षणिकस्या(त्वा)दि प्रत्यक्षादिप्रबो(बा)धितम्। बह्वेवायुक्तमुक्तं यैः स्युः सर्वज्ञाः कथं नु ते ॥'—तत्त्वसं० ३३२५-२६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि किसीने[1] नैरात्म्यदर्शनको तो किसीने[2] पुरुष-प्रकृति आदि तत्त्वोंके साक्षात्कारको, किसीने[3] द्रव्य-गुणादि छः पदार्थके तत्त्वज्ञानको तो किसीने[4] केवल आत्मज्ञानको यथार्थ कहकर उसके द्वारा अपने-अपने मुख्य प्रवर्त्तक तीर्थङ्करमें ही सर्वज्ञत्व सिद्ध किया है, जब जैनाचार्योंने[5] अनेकान्तवादकी यथार्थता दिखाकर इसके द्वारा भगवान् ऋषभ, वर्द्धमान आदिमें ही सर्वज्ञत्व स्थापित किया है। जो कुछ हो, इतना साम्प्रदायिक भेद रहनेपर भी सभी सर्वज्ञवादी दर्शनोंका, सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञान और तज्जन्य क्लेशोंका नाश और तद्द्वारा ज्ञानावरणके सर्वथा नाशकी शक्यता आदि तात्त्विक विचारमें कोई मतभेद नहीं।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

---

१. 'अद्वितीयं शिवद्वारं कुदृष्टीनां भयंकरम्। विनेयेभ्यो हितायोक्तं नैरात्म्यं तेन तु स्फुटम्॥'—तत्त्वसं० का० ३३२२।

२. 'एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्। अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥'—सांख्यका० ६४।

३. 'धर्मविशेषप्रसूतात् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्'—वै० सू० १. १. ४।

४. 'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन इदं सर्वं विदितम्।' —बृहदा० २. ४. ५।

५. 'त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम्। आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते॥'—आप्तमी० का० ७। अयोग० का० २८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org